अंतर्मन की यात्राएँ

(काव्य संग्रह)

(कमल वीथि पुष्प-7)

डॉ. भारती वर्मा बौड़ाई

अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन

इंदौर,मध्यप्रदेश

ISBN- 978-81-937811-1-1

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन

कार्यालय: १५ नेहरु चौक वारासिवनी,जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

शाखा: एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१

दूरभाष: (कार्या) ०७६३३-२५३१५९ मो ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabshakti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८ © डॉ. भारती वर्मा बौड़ाई

मूल्य: ६५.०० रुपये

आवरण चित्र: अभिषेक बौड़ाई

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

RANGON KE SATH by Dr.Bharti Verma Baurai'

वैधानिक चेतावनी : इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है | लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता हैं |प्रस्तृत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई हैं | अत :प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु प्रत्येक लेखक जिम्मेदार हैं| प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र,भाषाशैली,एवं स्थान सभी लखक की कल्पना हैं | किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं हैं|

यात्राएँ.... मन की

मेरी नानी
स्वर्गीया सुगुनी देवी को
जो मेरे ननिहाल की प्राण थी
जिनका जाना मेरे लिए
बहुत मर्मांतक था
आज भी उनका स्थान
मेरे मन में कोई नहीं ले पाया।

स्वर्गीया सुगुनी देवी

यात्राएँ कभी नहीं रुकती। सतत चलने वाला जीवन का अभियान है ये। मानव एक जगह स्थिर होकर बैठा नहीं रह सकता। इधर से उधर कभी काम से तो कभी बिना काम के भी वह गतिशील बना रहता है। मानव से अधिक सर्वाधिक यात्राएँ उसका मन करता है या यूँ कहें कि मन सतत यात्री बना यात्राएँ करने में लीन रहता है। इसीलिए तन से अधिक यात्राएँ करता है मन। जब तन अशक्त हो जाता है तो मानव स्थिर होकर रहने लगता है, पर मन सदा का चंचल, चलायमान... उसके लिए शांत होकर बैठना संभव नहीं। वह स्मृति के गलियारों में जहाँ-तहाँ घूमना, विचरण करना आरंभ कर देता है। तभी तो वयोवृद्ध लोगों के पास अनुभवों का, बातों का, कथाओं का, संस्मरणों का, अपने समय के इतिहास की जानकारियों से समृद्ध, भरपूर भंडार होता है। वह अपने समय की जीवंत किताब होते हैं। उनके पास बैठ कर नित थोड़ा-थोड़ा समय बिताया जाए तो उस समृद्ध, अनमोल भंडार से जो अनुभव-धन प्राप्त होता है वह उनके द्वारा की हुई जीवन-यात्रा का प्रसाद ही तो होता है। आपाधापी से भरे हुए जीवन में आज व्यक्ति के पास स्वयं अपने लिए ही समय नहीं बचा है। मशीन की तरह बना व्यक्ति कहाँ वयोवृद्धों से अनुभव- प्रसाद ले पाने के लिए सक्षम है।

यात्राएँ तन की हों या मन की.... कितना कुछ दे जाती हैं हमें...हम अल्पज्ञानी समझ ही नहीं पाते। तब जीवन में उनका उपयोग कर पाना तो बहुत दूर की

बात है। यात्रा करके लौटे व्यक्ति से यदि हम उसका यात्रा वृत्तांत सुनें तो आधी यात्रा का आनंद तो हमारा मन अनुभव कर ही लेता है।मेरा मन सदा यात्राओं में रमा रहा। घर में हो या बाहर... वह जैसे कभी रुका ही नहीं। इन्हीं के मध्य दुखी-सुखी होता रहा। तन से अधिक मेरे मन ने यात्राएँ की हैं। लेखनी थामे सृजन की ये यात्राएँ ही मेरे अंतर्मन की यात्राएँहैं, जिनमें कई पड़ाव आए हैं। इन यात्राओं में चलते हुए मन कभी थका नहीं। तन थका तो मन ने उत्साहित किया और मन थका तो परम शक्ति प्रेरित करती सी लगी।

शरीर इस भौतिक संसार का प्रतीक है। आत्मा...जो सर्वत्र है शरीर उससे हमारी जीवात्मा को ठीक उसी प्रकार अलग रखता है जिस प्रकार पात्र सरोवर के जल को सरोवर से अलग कर देता है और यह भी सच है कि पात्र के टूटते ही पात्र का जल (आत्मा) सरोवर के जल (परम आत्मा) से एकाकार हो जाता है। जीवात्मा (पात्र के जल का केंद्र स्थित जल) इस शरीर के जीवनकाल में अर्जित संस्कारों को अगले जीवन तक प्रारब्ध के रूप में ले जाती है।शरीर, जीवात्मा, आत्मा तथा इस संसार को इंद्रियों के माध्यम से देखता, विद्युत वेग से विचरण करता हुआ यह मन मानो सबसे बड़ा जिज्ञासु यात्री और पर्यटक है। तभी तो यह कहीं रुकता नहीं, बैठता नहीं। सतत यात्री बना सतत यात्रा में लीन।अंतर्मन की ये यात्राएँ मेरा प्यार भी हैं तो साहस भी हैं, ऊर्जा भी हैं तो प्रेरणा देती हुई, पथप्रदर्शक बनी प्रकाश पुंज भी हैं। इन यात्राओं में जो भी परिचित-अपरिचित साथ चलें हैं वो किसी न किसी रूप में मेरे प्रणम्य हैं। उनके बिना अंतर्मन की यात्राएँ असंभव थीं। अंतर्मन की ये यात्राएँ इसी तरह मेरी अंतिम श्वास तक चलें....... इतना ही चाहती हूँ मैं!

डा० भारती वर्मा बौड़ाई

अनुक्रमणिका

1. क्यों न प्यार करे कोई!	7
2. सवेरा	7
3. निरंतरता	8
4. आकाश :: चार कविताएँ	9
5. प्रश्न	10
6. जो..	10
7. मन पंछी	10
8. झंझावात	10
9. व्यवस्था	11
10.दधीचि	12
11.किलकारी	13
12.नदी :: दो कविताएँ	14
13.गुजारिश	15
14.चाँदनी	15
15.बादल	15
16.एवरेस्ट	15
17.समुद्र :: तीन कविताएँ	16
18.ज्वालामुखी	17
19.जहाँ तक भी....	17
20.लो निकल आई धूप!	18
21.गाँधी जयंती-1	19

22.गाँधी जयंती-2 20
23.ईर्ष्या 21
24.आदमी 21
25.पूर्वज 22
26.पंख 22
27.तुम जिंदा हो! 22
28.शब्द 22
29.नदी चुप है 23
30.वे 24
31.वह बनूँ 25
32.बच्चे 26
33.एक ही..... 27
34.सीखा क्या...? 27
35.अधूरा पत्र 28
36.रोको न कोई 29
37.नींद 30
38.ढूँढती है... 31
39.तीन क्षणिकाएँ 32
40.यात्राएँ 32

क्यों न प्यार करे कोई!

मेरी
कविता का आकाश
तुम्हारा
जमीन मेरी है,
यह विभाजन महज इसलिए
हमारे मध्य
एक अनजानी सी
दूरी है...

खिड़की से
चाँद की तरह
देखते रहना
मेरी विवशता है,
तुम ही कहो..
आकाश, पर्वत, समुद्र
धरा, पवन, जल से निर्मित
अदभुत व्यक्तित्व में
बसी निस्सीमता देख
क्यों न प्यार करे कोई?

सवेरा

जुगनुओं से
सज कर आई
बरसात की रात
सवेरे के कानों में
हमारी ही बात
धीरे से कहती हुई
लौट गई घर.....

सुनते ही सवेरा
यूँ खिलखिलाया
उग आए आँगन में
सैकड़ों इंद्रधनुष!...

जिसके हर रंग में
तुम बसते हो
मेरी नासमझ कल्पना पर
दूर खड़े
मन ही मन
हँसते हो।

निरंतरता

शाम
उदास हो या रंगीन
सदा प्यारी लगती है

रात के
गहराते धुँधलके में
अपने में सिमटी
अपने को ढूँढती हूँ

देखती हूँ
इधर-उधर
अंधेरों के बीच
जैसे कृष्ण बोलते हैं
यूँ गांडीव रख देने से
क्या होगा?

हर जगह यहाँ
युद्ध सा ठना है
कहाँ और कितना बचोगे?
तन कर ही
कठिनाइयों के शव पर
शिव स्थापित करोगे!

तब दिखता है
उन्हीं अंधेरों के बीच
जुगनू सा चमकता मार्ग
यात्रा की निरंतरता के लिए।

आकाश :: चार कविताएँ

1.

खुले आकाश को
मुट्‌ठी में भरो तो
मुट्‌ठी कितनी छोटी लगती है!

बड़प्पन आकाश का
छोटापन मुट्‌ठी का
दोनों बड़े है...

महत्वाकांक्षाओं के सम्मुख
दोनों अड़े
खड़े है.......।

2.

एक टुकड़ा आकाश
भला किस काम का
जिसे पाकर भी
छू तो सकें ना,
देखें भी तो
बस दूर खड़े-खड़े।

3.

मुट्‌ठी हो
या बंद
फ़र्क क्या पड़ता है?
समाएगा तो
उतना ही आकाश
जितना हिस्से में
लिखा है।

4.

बाहों में लिए
आकाश को
लुटने के भय से
कहाँ-कहाँ भागोगे?
लुटेरे सफेदपोश तो
हर जगह
हर समय मौजूद हैं।

प्रश्न

भविष्य का
प्रश्न
जब भी
खुद पर छोड़ा है
जीवन समर में
विजित योद्धा बन
लौटी हूँ...
विगत को
दोहराने को
विवश नहीं हुई हूँ।

जो..

जो हो
वही दिखो
जो नहीं हो
वो मत दिखो,
जो नहीं हो
वो दिखने की
कोशिश में
वह भी नहीं रहोगे
जो तुम हो।

मन पंछी

छोटा घर
बंद कमरे..
मन का आजाद पंछी
भला कैसे, क्योंकर
चैन पाए?
खिड़की के सींखचों से
टकरा-टकरा रह जाए
कूल/किनारा
कहाँ से पाए
यही-यही बस
सोचता जाए,..सोचता जाए......।

झंझावात

विचारों का झंझावात
इतनी तेजी से चलता है
निर्णय बरसों के
पल में बदल जाते हैं...
इन पर टिका जीवन
नए-पुराने के मध्य
रहता है आजीवन संघर्षरत
जो टूटता है
पर झुकता नहीं।

व्यवस्था

हमसे
व्यवस्था है
या व्यवस्था से हम हैं
अक्सर ये सवाल
मथता है सूरजदीन को...
जब चुनावों के बाद
बनती है नई सरकार!
वो पिछला रोना
रोती ज़्यादा,
काम कम करती है
खड़ी रहती हैं
समस्याएँ ज्यों की त्यों,
झुलसते रहते हैं
पंजाब/ कश्मीर
आतंकवाद की आग में,

होते रहते हैं लोग
गोलियों के शिकार
और सैनिक शहीद....
भयभीत/ पीड़ित परिवारों को
मिल जाता है सरकारी मुआवजा....
समाचारपत्र छापते हैं
आकाशवाणी/ दूरदर्शन
बोलते हैं
सर्वत्र शांति
व्यवस्था ठीक,
अप्रिय घटना एक नहीं.....

सूरजदीन
देखता/सोचता रहता है
वह भी करेगा विद्रोह
व्यवस्था के खिलाफ
उगलेगा आग,
पर इससे होगा भी क्या?
उसे भी
मिलेगी अकाल मौत,
परिवार को चंद नोट...
नोटो से खरीद कर
भुला दिया जाएगा सब
परिवार/समाज से....

राजनीतिक स्वार्थ सधते रहेंगे,
लोग मरते रहेंगे,
समाचारपत्रों, आकाशवाणी,
दूरदर्शन में
शांति, व्यवस्था,
अखंडता बनी रहेगी
जनता खरीदी/ठगी जाती रहेगी
खरीदते/ठगते रहेंगे
कुर्सीदार/ ईमानदार शासक!

दधीचि

किसी
हिममंडित
पर्वत शिखर से
पर्वतों दर पर्वतों
बहते आए
झरने के सम्मुख
सूखने के बाद भी
गर्व से सीना ताने
आज भी
खड़ा क्यों हूँ मैं.....
राह पर आता-जाता
हर बच्चा/ जवान/बूढ़ा
विद्‌यार्थी/मजदूर
सब पूछते हैं मुझसे.....
कितने ही वसंत आए,
पत्तों/फूलों का
मोहक संसार
अब कहाँ मिलेगा?
फिर मैं
मर क्यों नहीं जाता?
पूछते हैं उत्तर....
दूँ भी
तो क्या
समझेंगे क्या
हमारे ऋषि/मुनियों की
पावन/पुरातन परंपरा!

बड़े होने से लेकर
कितने ही वर्षों तक
देता रहा छाया
लुटाता रहा मुक्तहस्त
सुगंध पुष्पों की,
मोहता रहा सौंदर्य से अपने
रसिकों के हृदय को
और आज
खड़ा हूँ अब भी
देने को अपनी अस्थियाँ
कोई माँगने/लेने आए
तो देकर मैं भी
मुक्त हो बंधनों से
समाधिस्थ हो जाऊँ
दधीचि की तरह
तभी पूर्ण होगी
तपस्या मेरी।

किलकारी

अपना घर
वही दीवारें
आँगन
कमरें...
जहाँ
सोच सकती हूँ
मैं अपने ढंग से...
नहीं घिरी हूँ
किसी परिधि के बीच में!

पर,
लगता है
शब्द चुक गए हैं,
मौन की निस्तब्धता
टूटती नहीं....

शब्द
उगेंगे फिर
जंगलों की तरह
मौन बहेगा
नदी की तरह
जब छुट्‌टियों में
गूंजेगी घर में
बेटी की किलकारी
खिलेगी उजली हँसी....।

नदी :: दो कविताएँ

1.

ये जो बर्फ का एक टुकड़ा
जमा है तुम्हारे सीने में,
नेह के परस से खुद गल जाएगा....
उफनने/मचलने लगेगी
जो सारे बांध तोड़
बह कर मुझ तक आएगी
तब तुम लिखोगे खत
उन हवाओं के नाम
जो मेरी गलियों
सड़कों से गुजर कर
पहुँची हैं तुम तक।

2.

छोटी
नदी हूँ तो क्या...
संग तुम्हारे
पत्थरों को ढकेलती
पहाड़ों / मैदानों
गाँवों / नगरों को पार कर
देखते ही देखते
समुद्र हो जाऊँगी।

गुजारिश

आज के
आदमी से
बस इतनी गुजारिश
लता/बेल जैसे
लिपटने के बजाय
वृक्ष बने...
अपना सहारा
आप बने।

चाँदनी

चाँदनी
चाँद की
सबके लिए
बराबर....
फिर दुनिया में
इतने विवाद क्यों?

बादल

कोई कोना
हम क्यों चाहें...
सारा आकाश
हमारा है,
हम तो हैं
चंचल बंजारे
कभी आयेंगे
कभी जायेंगे।

एवरेस्ट

कितने
चढ़ नहीं पाए,
कितने चढ़े
और चढ़ेंगे,
कितने हारे
और जीते....
इन सबसे बेखबर
एवरेस्ट
देता चुनौती सा
भावी आरोहियों को
खड़ा है सीना ताने
सबसे ऊँचा.....!

समुद्र :: तीन कविताएँ

1.

सीमा भले ही
जान ले कोई
पर समुद्र की गहराई की
थाह पाने को
अनवरत युगों की यात्रा जरुरी है
समुद्र होने को
समुद्रमय होना जरूरी है।

2.

भीतर है तुम्हारे
रस का सागर,
वहाँ नहीं
जहाँ तुम विचरते हो!

3.

मैं समुद्र हूँ तो क्या....
मेरे तूफानों को
रोक नहीं सकते तो क्या....
आकर मुझमें
खो तो सकते हो
आकंठ !

ज्वालामुखी

सब मजबूरियाँ
जब इकट्ठी हो जायेंगी
तब....
फूटेगा एक दिन
ज्वालामुखी
समाधानों का,
उस दिन
ये पहाड़
चुप नहीं रहेंगे
बोलेंगे.....
सफेदपोशों की
परतों को
चुन-चुन खोलेंगे।

जहाँ तक भी....

अपने
प्रयासों से
जहाँ तक भी
पहुँच सकें
पहुँचें....
नहीं लें
कृपा/दान,
जो चुभे
काँटे सा
बार-बार
देर-सबेर
जब-तब
जिंदगी के मोड़ों पर।

लो निकल आई धूप!

वर्षा और बादलों से
धक्का-मुक्की करती
संघर्ष में विजयी हो
लो
निकल आई धूप..!

वर्षा से दुबके थे
जो कई दिन से
घर में उन्हें दुलराने
लो
निकल आई धूप...!!

नदियाँ, पहाड़ों
खेतों और पेड़ों से
ख़ूब-ख़ूब बतियाने
लो
निकल आई धूप....!!!

सुबह-सुबह
अम्मा और बाबू के
संग-संग घूमने
लो
निकल आई धूप.....!!!!

गाँधी जयंती-1

आज
गाँधी जयंती है
देश भर में
जगह-जगह
समारोह-सभाएँ हो रहीं हैं
श्रद्धांजलि अर्पित करने की
होड़ा-होड़ी में
धुआँधार
भाषण दिए जा रहे हैं
कहीं
गाँधी का बचपन
कहीं यौवन
कहीं खादी
कहीं स्वदेश प्रेम
गाया जा रहा है
तो कहीं
गाँधी सिद्धांतों-सेवाओं पर
प्रकाश डाला जा रहा है।
लगता है
फिर जी उठे हैं गाँधी
पूरे एक वर्ष बाद
आज
कई प्रस्ताव
सभाओं में
पारित होंगे कई योजनाएँ
चालू होंगी गाँधी पुरस्कार
वितरित किये जाएँगे
आज भर के लिए
चलेगा सफाई अभियान
भाषण सुनते
श्रोताओं के बीच
उबासियाँ लेते
कोई गोडसे को सराहेगा
कोई कोसेगा
और कोई
आज के
भारत की स्थिति के लिए
गाँधी को दोषी ठहरायेगा।
इन्हीं सब के बीच
सर्वधर्म प्रार्थना सभा होगी
दिल्ली में राजघाट पर
फूल चढ़ाए जाएँगे
और ऐसे होगी
गाँधी जयंती की इतिश्री।
पूरे एक साल बाद
मेहनत से जगाए गाँधी
आज से फिर सोएँगे
निश्चिन्त
आने वाली अगली
गाँधी जयंती तक।

गाँधी जयंती-२

किताबों
फोटो में,
बैठकों/कार्यालयों में ही
बचे हैं गाँधी....
नहीं हैं तो बस
दिलों में नहीं हैं..
शिक्षाएँ उनकी
पुस्तकालयों/भाषणों में
कैद हैं और चरखा
संग्रहालय में...
जब उन्हें
जगाना होगा,
गाँधी जयंती और
शहीद दिवस मनाना होगा,
मध्यावधि/ पूर्णावधि चुनावों में
वोट माँगने होंगे
तभी ढूँढा जाएगा
खोये गाँधी को....
अन्यथा तो वे
आउट ऑफ़ डेट,
आउट ऑफ़ फैशन,
आउट ऑफ़ पॉलिटिक्स हैं।

ईर्ष्या

बंधु
ये बीज
तुम्हारी इर्ष्याग्नि में
झुलस कर
न उगें
और मिट्टी में मिल जाएँ,
पर, मैं यहीं इसी जगह
तुम्हारी ईर्ष्या की
ज़मीन पर उगूँगा/बढ़ूँगा
और तुम
कुछ नहीं कर पाओगे।

आदमी

दूसरों को गिराने की नाकाम कोशिश में
किस कदर हड़बड़ा रहा है आदमी।
देश के नाम पर मीठा - मीठा ज़हर
ठंडी हवाओं में घोल रहा है आदमी।
ज़ख्म देकर मरहम लगाने का नाटक
करते - करते थकता नहीं है आदमी।
क्या रूप, क्या रंग निखर आया है देखो
आदमी को मार रहा मौन होकर आदमी।

पूर्वज

हम सुखी
पूर्वज महान थे,
पूर्वज दुखी
हम कुछ भी नहीं....।

पंख

पंख देकर
पंख कतरने की
कोशिश काफी है
किसी के भी
विद्रोही होने के लिए.....!!

तुम जिंदा हो!

आग और गुस्सा
जब तक तुम्हारे भीतर है
तुम जिंदा हो.....
जहाँ इनमें से एक गया..
तुम मरे........।

शब्द

हर शब्द
जब प्रेरित हों राजनीति से
खो देते हैं अपने अर्थ,
खोखले हो
उड़ते हैं हवा में
कागज की चिंदियों समान।

नदी चुप है

नदी चुप है!!...
पहले उसके
किनारे-किनारे
सभ्यताएँ विकसीं
संस्कृतियाँ पनपीं,
इतिहास साक्षी है
इस सबका...

पर,
अब उसके किनारे
विकस/पनप रहें हैं
भोंडी/अस्वस्थ राजनीति के
शिक्षण केंद्र!!....

इनमें गढ़े
कच्चे मोहरे
समय पर
क्या/कैसा
खेल दिखायेंगे
यही सोच
नदी चुप है
बहुत दिनों से.......।

वे

वे, जो संघर्षरत हैं
असहायों की खुशी के लिए,
चंद मुट्ठी भर तिनके लिए
प्रयासरत हैं
अपना आराम, नींद छोड़ कर्....

वे सोचते हैं
कोई आएगा साथ जुड़ने/ चलने...

पर,
उन्हें क्या पता
प्रतीक्षा में हैं जिनकी
वो लोग कितने कायर
नपुंसक है....
जो साथ चलना तो दूर
कहने में भी पीछे हटते हैं....

रास्ता
जो चुनें
बिना प्रतीक्षा के
स्वयं उस पर चलें
चलते रहें.....

कारवाँ स्वतः बनता जाएगा......।

वह बनूँ

वह सेतु बनूँ
जिस पर चल कर
दिलों की दूरियों को
पाट सकें सब!!

वह नाव बनूँ
जिसमें बैठ कर
मधु/ तिक्त
अनुभवों को भुला कर
हृदय-नगरी में सीधे
प्रवेश करें सब!!

वह सुगंध बनूँ
दिल से निकल कर
पहुँचे दिल तक
पहचानी जाए
दूर से ही
सभी से!!

वह गीत बनूँ
जिसके बोल
सब गुनगुनाएँ
हर काल में!!

वह हवा बनूँ
जो चले तो
मन भाए सभी के
रिझाए उन्हें भी
जो दोस्ती के रंग को
बेरंग कर रहें हैं!!

वह साज बनूँ
जिसके तार पर
थिरकती जिंदगी
स्वयं एक
गीत बन जाए!!

वह दीप बनूँ
जिसका उजियारा
सबके मन-प्राणों पर
बादल सा छाए!!

लक्ष्य बस इतना
भिन्न होते हुए भी
एक सूत्र में बँधे
एक प्राण दिखें
अपनी दृष्टि में हम!!

बच्चे

जवान
हो रहें हैं बच्चे
बूढ़े हो रहे
माँ-बाप!

देख रहें हैं
अपनी जवानी
अपने बच्चों में...

बच्चे
क्यों नहीं
देख पाते उनमें
अपना आने वाला वार्धक्य.....?

माँ-बाप
तलाश रहे
अपनी वृद्धावस्था को
शांति से जी पाने का सुख......!

पर,
कितनों को
मिल पाता है ये सुख.....?
और कितनों का
ले जाता है ये सुख.....???

एक ही.....

एक ही
माता-पिता से
जन्मी संतान
बेटे-बेटी,....

साथ-साथ पले-बढ़े...

बड़े हो
विवाह होते ही
बेटे बन जाते मालिक
और बेटियाँ मेहमान.......!!

सीखा क्या...?

प्रश्न पहाड़ जैसा
होने/बनने का नहीं.......

प्रश्न तो
यह है गहन

पहाड़ों में रहकर
पहाड़मय होकर

पहाड़ से हमने
सीखा क्या....गुना क्या.......??

अधूरा पत्र

यह
अधूरा पत्र
पूरा नहीं
हो पा रहा,
शायद
ऐसे ही
जाना है इसे
अपने गंतव्य तक...

अपनी
पूर्णता के लिए
ऐसी यात्राएँ
बेहद जरूरी है...

यात्राओं में
स्वयं को तलाशो,
परखो निज कसौटियों को...
तब
शुरू हो
नई यात्रा
जिसमें सहयात्री
कोई न हो,
अपने
विचारों के मध्य
कोई न हो.......!!

रोको न कोई

सूरज से कहो
आज घर न लौटे,
जाते ही उसके
उभरने लगेंगे अंधेरों में
विचारों के
वे धुँधले अवशेष
जिन्हें मिटाती रहूँ....

झाँकने लगेंगे
वे सारे रिश्ते
जो मिल चुके मिट्टी में....

ढूँढने लगेगा मन
वो पावनता रिश्तों में
जो बची है केवल
किस्सों-कहानियों
और किताबों में......

इसी से
कहती हूँ
घर लौटने का
प्रयास करते
सूरज को धमका कर
अरे! रोको न कोई......।

नींद

गीत गुनगुनाती थपकियाँ दे दे
स्वयं को सुलाती थक गई आँखें.....

पर, परियों के देश में
हवा सी बहती,
नदी सी खिलखिलाती
उन्हीं की
हँसी-ठिठोली में रमी
नींद! भूले से
आँखों तक आ
द्‌वार तक आ
भला क्यों लौट गई......?

दिन भर का
सोचा/सहेजा
कितना कुछ था बताने को
सब रह गया धरा.....
स्वप्नों में खोने का
क्षणिक सुख भी खोया,
नहीं जानती
घंटों, एकाकी
किसे याद कर
मन बावरा रोया......??

ढूँढती है...

पत्थर बनी अहिल्या
तुम्हारे रास्ते में ही तो थी,
छूने पर भी
तुम्हारी सुगंध बन
चंदन सी
बिखर पाई क्यों नहीं......

राधा बनी
गोकुल की गलियों में
तुम्हारे ही गीत गाती रही
पर, तुम्हारी बंसी
मन के तारों को
झंकृत कर पाई क्यों नहीं.....

मतवाली मीरा बन
लोकलाज तज
प्रीत में नाची तो थी
पर, तुम में मिल
एकाकार
हो पाई क्यों नहीं....

तुम्हें पाने को
संघर्ष के हिमालय पर
उमा बन
तप की अग्नि में तपी
पर, तप का सुफल
स्वीकार पाई क्यों नहीं.....

मेरे पुरुरवा!
स्वर्ग की गलियों में
लौट जाने पर भी
उर्वशी! ढूँढती है ईमानदारी
जो रिश्तों में साथ चलने की
पहली सीढ़ी होती है......!

तीन क्षणिकाएँ

प्रेम

प्रेम वो
जो हर दीवार से
टकरा
विजयी बन
काँटों मध्य खिले
गुलाब सा।

पड़ोसी

सुख-चैन के
अमूल्य क्षणों पर
डाके डालने वाला
सफेदपोश
महात्मा।

जिंदगी

जिंदगी
उन का गोला
स्वेटर तो बना
नमूना न डल सका।

यात्राएँ

यात्राएँ
खत्म कहाँ होती है?

निरंतर
चलती रहती हैं
भीतर और बाहर

जैसे
तलाशती है मार्ग कोई
अपने अंत का

अंत
नई यात्रा का
आरंभ ही तो है

कभी दिन की धूप में
तो कभी हँसती/ खिलखिलाती
शाम की मधुरिमा में

साथ-साथ हम चलें
चलते रहें
कभी यात्रांत न हो।